

# मौजूदा प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था: बदलाव की ज़रूरत

के. लेनिन बाबू व एस. मानसी

पिछले कुछ दशकों के दौरान देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि का हिस्सा लगातार कम होता गया है। आज यह महज 22 फीसदी रह गया है। दूसरी ओर देखें तो उद्योग व सेवा क्षेत्र का लगातार विस्तार होता जा रहा है। इसका नकारात्मक असर प्राकृतिक संसाधनों पर देखा जा सकता है। आज ये संसाधन खतरे में नज़र आ रहे हैं। आईटी जैसे ज्ञान क्षेत्र के भरपूर विकास के बावजूद आज भी तथ्य यह है कि हमारी 65 फीसदी आबादी आजीविका के लिए सीधे-सीधे प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भर है। इसके मद्देनज़र प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण न केवल देश के पर्यावरण के लिए, वरन अर्थव्यवस्था के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण है।

किसी भी औद्योगिक गतिविधि में प्रदूषण पर सौ फीसदी नियंत्रण, यानी शून्य प्रदूषण न तो तकनीकी रूप से सम्भव है और न ही आर्थिक रूप से व्यावहारिक है। देखा जाए तो प्रकृति में ऐसी क्षमता होती है कि वह प्रदूषणकारी पदार्थों को एक सीमा तक खुद ही उपचारित कर सकती है। इसलिए सबसे अच्छा विकल्प तो यही है कि हम उत्सर्जित होने वाली गैसों या अन्य अपशिष्ट पदार्थों को इस स्तर तक ले जाएं कि बगैर किसी नकारात्मक परिणाम के प्रकृति ही उनका उपचार कर सके। प्रदूषण के इस सुरक्षित स्तर को तय करने का काम केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल (सीपीसीबी) को सौंपा गया है। इसके क्रियान्वयन की ज़िम्मेदारी राज्य प्रदूषण नियंत्रण मंडलों (एसपीसीबी) को दी गई है। ये मंडल मूलतः जल (संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम 1972 के क्रियान्वयन के लिए स्थापित किए गए थे। बाद में अन्य कई कानूनों जैसे वायु अधिनियम 1984 और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के क्रियान्वयन का दायित्व भी इनके ही हवाले कर दिया गया। राज्य मंडलों को इन कानूनों का उल्लंघन होने पर उद्योगों पर मुकदमा चलाने का अधिकार दिया गया है। ये उन्हें अपनी गतिविधियां बंद

करने का आदेश भी दे सकते हैं। प्रदूषण नियंत्रण सम्बंधी बेहतर तकनीकों का विकास करने और समाज में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागृति पैदा करने की ज़िम्मेदारी भी इन्हीं के कंधों पर है। आर्थिक संसाधन बढ़ाने के लिए प्रांतीय मंडल उद्योगों से 'मंजूरी शुल्क' भी वसूल कर सकते हैं।

इस सारी कवायद में सबसे कमज़ोर कड़ी है प्रदूषण नियंत्रण के विसंगतिपूर्ण मानक। ये मानक अक्सर वर्तमान में इस्तेमाल की जा रही टेक्नॉलॉजी को ध्यान में रखकर विकसित किए जाते हैं। लिहाज़ा न तो इनमें टेक्नॉलॉजी में हो रही तरक्की का ध्यान रखा जाता है न इस बात का ध्यान रखा जाता है कि इस प्रदूषण को ग्रहण करने वाले तंत्र में बर्दाश्त करने की क्षमता कितनी है। जैसे नदी व समुद्र किनारे स्थित बिजली संयंत्रों पर एक जैसे मानक लागू करने का कोई अर्थ नहीं है।

दूसरा उदाहरण है कि इन मानकों का पालन एक-एक इकाई को करना होता है। अब व्यक्तिगत तौर पर हर वाहन मालिक निर्धारित मानक का पालन करे तो भी यह ज़रूरी नहीं है कि वायुमंडल स्वच्छ रहेगा। क्योंकि थोड़ा-थोड़ा प्रदूषण भी मिलकर खतरनाक स्तर को पार कर सकता है। दिल्ली में ऐसा ही हुआ। वहां लाखों वाहनों की वजह से वायु प्रदूषण इस हद तक बढ़ गया कि कैंसर में अचानक इजाफा होने लगा था। अंततः वहां सीएनजी और भारत-2 तकनीक को अनिवार्य बनाना पड़ा।

हमारे सभी प्रदूषण नियंत्रण कानूनों में मानकों के पालन का ज़ोर औद्योगिक इकाइयों या वाहनों तक सीमित है, जबकि कृषि गतिविधियों व घरों से निकलने वाले सीवेज को अनदेखा किया गया है। सच तो यह है कि कृषि कार्यों में रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रचलन और सीवेज वाटर की वजह से भी प्रदूषण में भारी इजाफा हो रहा है, लेकिन इस सम्बंध में प्रदूषण नियंत्रण कानून चुप्पी साधे हुए हैं।

हमारे प्रदूषण नियंत्रण के मानक भी बाबा आदम जमाने

के हैं। वर्ष 1974 में प्रदूषण नियंत्रण सम्बंधी मानकों की प्रथम अधिसूचना जारी की गई थी। इसके बाद इन मानकों में समय के साथ किसी प्रकार का कोई बदलाव नहीं किया गया। इस बीच हमारे अधिकांश जल स्रोतों की गुणवत्ता में भारी गिरावट आई है। इसी प्रकार वायु प्रदूषण नियंत्रण सम्बंधी मानक भी 1981 के बाद संशोधित नहीं किए गए, जबकि वायु व शोर प्रदूषण में भी बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है।

वर्ष 1972 में स्टॉकहोम में मानव बसाहट पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन के ठीक बाद भारतीय मानक संस्थान (तत्कालीन भारतीय मानक ब्यूरो) ने प्राकृतिक स्रोतों के संरक्षण के लिए पहला केंद्रीय कानून लागू किया। कानून बनाने की जल्दबाजी का ही परिणाम था कि वर्ष 1974 में लागू जल अधिनियम में अपशिष्ट पदार्थों के उत्सर्जन के जो मानक तय किए गए, वे मानव स्वास्थ्य पर ही केंद्रित थे, जबकि पर्यावरण द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं पर होने वाले प्रभावों को यून ही छोड़ दिया गया।

किसी भी पर्यावरण सम्बंधी कानून की सफलता या विफलता बहुत कुछ निगरानी व्यवस्था पर निर्भर करती है, जबकि हमारे प्रांतीय मंडल इस मामले में भी कमजोर साबित हुए हैं। हमारे यहां हर प्रदेश में 'रेड कैटेगरी' वाली हज़ारों औद्योगिक इकाइयां मिल जाएंगी। इसके अलावा उच्च प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों की तादाद भी बड़ी संख्या में है, लेकिन प्रांतीय मंडलों में निगरानी करने वाले कर्मचारियों की संख्या शायद ही कहीं दो अंकों में होगी।

प्रदूषण नियंत्रण मंडलों की स्थापना के समय उनके लिए एक लक्ष्य यह भी तय किया गया था कि वे स्थानीय ज़रूरतों के अनुसार कम लागत वाली पर्यावरण अनुकूल तकनीकों का विकास करेंगे, लेकिन इतने साल गुजर जाने के बाद भी न तो केंद्रीय मंडल ने और न ही प्रांतीय मंडलों ने ऐसी किसी तकनीक का विकास किया है। प्रदूषण नियंत्रण के लिए इस्तेमाल की जा रही सारी तकनीकें यहां-वहां से उधार ली गई हैं।

मौजूदा कानूनों और उनके क्रियान्वयन के मद्देनज़र यह साफ है कि हमारे प्राकृतिक स्रोतों, चाहे वे जल भंडार हों या हमारा वायुमंडल, में और भी गिरावट आना तय है। सुझाव दिया जाता रहा है कि दिल्ली में जो मानक लागू हैं, उन्हें पूरे देश में लागू कर दिया जाए। लेकिन यह इतना आसान नहीं है। ऐसे में ज़रूरत इस बात की है कि स्थानीय ज़रूरतों के मद्देनज़र प्रदूषण नियंत्रण की तकनीकों का विकास किया जाए। इसके लिए प्रांतीय मंडलों को न केवल भारी मात्रा में धन खर्च करना होगा, बल्कि मानकों की समय-समय पर समीक्षा भी करनी होगी। 'क्लीन टेक्नोलॉजी' के इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए गैर परम्परागत ऊर्जा विभाग जैसे संगठनों की भी सहायता ली जा सकती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हमारे बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग और संरक्षण के लिए नींद से जागने का वक्त आ गया है। ऐसा न हो कि बहुत देर हो जाए ! *(स्रोत विशेष फीचर्स)*